राजर्षि
भाग 4

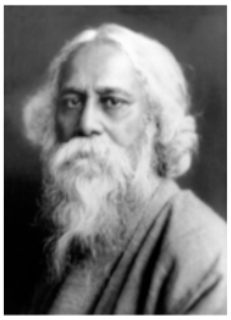

रविंद्रनाथ टैगोर

राजर्षि

भाग 4

https://www.hindiadda.com/rajarshi-part-iv/

चौंतीसवाँ परिच्छेद

नक्षत्रराय सैनिकों के साथ आगे बढ़ने लगा, कहीं तिलभर भी बाधा नहीं आई। त्रिपुरा के जिस भी गाँव में उसने कदम रखा, वही गाँव उसकी राजा के रूप में अगवानी करने लगा। पग-पग पर राजत्व का आस्वाद पाने लगा - क्षुधा और भी बढ़ने लगी, चतुर्दिक फैले खेत, ग्राम, पर्वत-श्रेणियाँ, नदी, सभी कुछ 'मेरा है' के रूप में अनुभव होने लगा तथा उसी अधिकार-विस्तार के साथ-साथ स्वयं भी जैसे बहुत दूर तक फैल कर अत्यधिक मजबूत होने लगा। मुगल सैनिकों ने जैसा चाहा, उसने बेरोकटोक उन्हें वैसा ही हुकुम दे दिया। सोचा, यह सभी मेरा है और ये लोग मेरे ही राज्य में आ पहुँचे हैं। इन्हें किसी प्रकार के सुख से वंचित नहीं करना है - मुगल अपने देश में लौट कर उसके आतिथ्य और राजावत उदारता और दानशीलता की बहुत प्रशंसा करेंगे; कहेंगे, 'त्रिपुरा का राजा कोई छोटामोटा राजा नहीं है।' मुगल सैनिकों में अपने को प्रसिद्ध करने के लिए वह हमेशा उत्सुक रहता है। उन लोगों के द्वारा किसी प्रकार की श्रुति-मधुर बातचीत करने से वह एकदम पिघल जाता है। हमेशा डर बना रहता है कि कहीं किसी प्रकार की बदनामी का कारण न घट जाए!

रघुपति ने आकर कहा, "महाराज, युद्ध की तो कोई तैयारी दिखाई नहीं पड़ रही है।"

नक्षत्रराय ने कहा, "नहीं ठाकुर, भयभीत हो गया है।"

कहते हुए ठठा कर हँसने लगा।

रघुपति ने हँसने का विशेष कोई कारण नहीं देखा, लेकिन फिर भी हँसा।

नक्षत्रराय ने कहा, "नक्षत्रराय नवाब के सैनिक लेकर आ रहा है। बहुत आसान मामला नहीं है।"

रघुपति ने कहा, "देखूँ, इस बार कौन किसे निर्वासन में भेजता है! कैसे?"

नक्षत्रराय ने कहा, "मैं चाहूँ, तो निर्वासन का दण्ड दे सकता हूँ, कारागार में भी बंदी कर सकता हूँ - वध की आज्ञा भी दे सकता हूँ। अभी निश्चित नहीं किया है, कौन-सा करूँगा।"

कह कर भारी जानकार की मुद्रा में बहुत विवेचना करने लगा।

रघुपति ने कहा, "महाराज, इतना मत सोचिए। अभी काफी समय है। किन्तु मुझे भय हो रहा है, गोविन्दमाणिक्य युद्ध किए बिना ही आपको पराजित कर देंगे।"

नक्षत्रराय ने कहा, "वह कैसे होगा?"

रघुपति ने कहा, "गोविन्दमाणिक्य सैनिकों को आड़ में रख कर भारी भ्रातृ-स्नेह दिखाएँगे। गले लगा कर कहेंगे - मेरे छोटे भाई, आओ घर आओ, दूध-मलाई खाओ। महाराज रोकर कहेंगे - जो आज्ञा, मैं अभी चल रहा हूँ। अधिक विलम्ब नहीं होगा। कह कर नागरा जूता पैरों में डाल कर बड़े भाई के पीछे-पीछे छोटे भाई सिर झुकाए टट्टू घोड़े की तरह चल देंगे। बादशाह की मुगल फ़ौज तमाशा देख कर हँसते हुए घर लौट जाएगी।"

नक्षत्रराय रघुपति के मुँह से यह पैना व्यंग्य सुन कर बहुत दुखी हो गया। थोड़ा हँसने की निष्फल चेष्टा करके बोला, "मुझे उन्होंने क्या बच्चा समझा है, जो इस तरह से बहकाएँगे! उसका कोई मौका नहीं आएगा। वह नहीं होगा ठाकुर। देख लेना।"

उसी दिन गोविन्दमाणिक्य की चिट्ठी आ पहुँची। उसे रघुपति ने खोल लिया। राजा ने अत्यंत स्नेह प्रकट करके साक्षात प्रार्थना की है। चिट्ठी नक्षत्रराय को नहीं दिखाई। दूत से कह दिया, "गोविन्दमाणिक्य को कष्ट उठा कर इतनी दूर आने की आवश्यकता नहीं है। महाराज नक्षत्रमाणिक्य सैनिक और तलवार लेकर शीघ्र ही उनके साथ भेंट करेंगे। गोविन्दमाणिक्य इस अल्प अवधि में प्रिय भाई के विरह में अधिक व्याकुल न हों। आठ बरस का निर्वासन होने पर इसकी अपेक्षा और अधिक समय के अलगाव की संभावना थी।"

रघुपति ने नक्षत्रराय के पास जाकर कहा, "गोविन्दमाणिक्य ने निर्वासित छोटे भाई को एक अत्यंत स्नेहपूर्ण चिट्ठी लिखी है।"

नक्षत्रराय परम उपेक्षा का दिखावा करते हुए हँस कर बोला, "सचमुच क्या! कैसी चिट्ठी? देखूँ तो कहाँ है?" बोल कर हाथ बढ़ा दिया।

रघुपति ने कहा, "मैंने वह चिट्ठी महाराज को दिखाना आवश्यक नहीं समझा। इसीलिए उसी समय फाड़ कर फेंक दी। कह दिया, युद्ध के अलावा इसका और कोई उत्तर नहीं है।"

नक्षत्रराय हँसते-हँसते बोला, "बहुत अच्छा किया, ठाकुर। तुमने कह दिया, युद्ध के अलावा और कोई उत्तर नहीं है? सही उत्तर दिया है।"

रघुपति ने कहा, "गोविन्दमाणिक्य उत्तर सुन कर सोचेगा, जब निर्वासन दिया था, तब तो भाई बड़ी सहजता से चला गया था, लेकिन वही भाई घर लौटते समय कम गड़बड़ नहीं कर रहा है।"

नक्षत्रराय ने कहा, "सोचेंगे, भाई बड़ा सरल आदमी नहीं है। मन में आते ही जिसकी जब इच्छा हो, निर्वासन दे देगा और जब इच्छा हो, बुला लेगा, वह होने वाला नहीं है।"

कहते हुए अत्यधिक आनंद में दूसरी बार हँसने लगा।

पैंतीसवाँ परिच्छेद

गोविन्दमाणिक्य नक्षत्रराय का उत्तर सुन कर बहुत मर्माहत हुए। बिल्वन ने सोचा, शायद महाराज अब आपत्ति प्रकट नहीं करेंगे। किन्तु गोविन्दमाणिक्य बोले, "यह बात कभी भी नक्षत्रराय की नहीं हो सकती। यह उसी पुरोहित ने कहला भेजी है। नक्षत्रराय के मुँह से कभी भी ऐसी बात नहीं निकल सकती।"

बिल्वन ने कहा, "महाराज, अब क्या उपाय सोचा है?"

राजा ने कहा, "अगर मैं किसी प्रकार एक बार नक्षत्रराय से मिल सकूँ, तो सारा मामला सुलझा सकता हूँ।"

बिल्वन ने कहा, "और यदि मिलना न हो सके?"

राजा - "वैसा होने पर मैं राज्य छोड़ कर चला जाऊँगा।"

बिल्वन ने कहा, "अच्छा, मैं एक बार कोशिश करके देखता हूँ।"

पहाड़ के ऊपर नक्षत्रराय का शिविर। घना जंगल। बाँस-वन, बेंत-वन, टाँटल-वन। नाना प्रकार के लता-गुल्मों से ढकी धरती। सैनिक जंगली हाथियों के चलने वाले मार्ग का अनुसरण करके शिखर पर चढ़ गए। अपराह्न है। सूर्य पहाड़ के पश्चिमी भाग में ढुलक गया है। पूर्व दिशा में अंधकार हो गया है। गोधूलि की छाया और वृक्षों की छाया के मिल जाने से जंगल में असमय संध्या उतर आई है। शीतकालीन संध्या के समय भूमितल से कुहासे के समान वाष्प उठ रही है। झिल्ली की झंकार से

निस्तब्ध वन मुखरित हो उठा है। बिल्वन के शिविर में पहुँचते-पहुँचते सूर्य पूरी तरह अस्ताचल को चला गया, किन्तु पश्चिमी आकाश में स्वर्ण-रेख विलीन नहीं हुई। पश्चिम की ओर वाली समतल घाटी में स्वर्णच्छाया-रंजित सघन वन निस्तब्ध हरे समुद्र के समान दिखाई पड़ रहा है। सैनिक कल सुबह कूच करेंगे। रघुपति एक झुण्ड सैनिक और सेनापति को साथ लेकर मार्ग की खोज में बाहर गया है, अभी लौटा नहीं है। यद्यपि रघुपति के संज्ञान में आए बिना किसी आदमी का नक्षत्रराय के पास आना मना था, तब भी संन्यासी वेशधारी बिल्वन को किसी ने नहीं रोका।

बिल्वन ने नक्षत्रराय के पास जाकर कहा, "महाराज गोविन्दमाणिक्य ने आपको याद किया है और पत्र लिखा है।" कहते हुए पत्र नक्षत्रराय के हाथ में थमा दिया। नक्षत्रराय ने काँपते हाथों से वह पत्र ले लिया। पत्र खोलते हुए उसे लज्जा और भय होने लगे। जितनी देर रघुपति गोविन्दमाणिक्य और उसके मध्य आड़ बना खड़ा रहता है, उतनी देर नक्षत्रराय बहुत निश्चिन्त रहता है। वह किसी भी तरह मानो गोविन्दमाणिक्य को देखना नहीं चाहता। गोविन्दमाणिक्य के इस दूत के एकदम से नक्षत्रराय के सम्मुख आ खड़े होते ही नक्षत्रराय जैसे किस तरह कुण्ठित हो गया, वह मन-ही-मन थोड़ा असंतुष्ट भी हुआ। इच्छा होने लगी, अगर रघुपति मौजूद रहता और इस दूत को उसके पास आने न देता! मन में बहुत इधर-उधर करने के बाद पत्र खोला।

उसमें जरा भी भर्त्सना नहीं थी। गोविन्दमाणिक्य ने उसे लज्जित करने वाली एक बात भी नहीं कही। भाई के प्रति जरा भी नाराजगी प्रकट नहीं की। नक्षत्रराय जो सैनिक-सामंत लेकर उन पर आक्रमण करने आया है, उस बात का उल्लेख तक नहीं किया। पूर्व में दोनों के बीच जैसा प्रेम था, मानो अभी भी अविकल वही प्रेम है। और भी, पूरे पत्र में एक सुगम्भीर स्नेह और विषाद छिपा हुआ है - वह किसी साफ बात के द्वारा व्यक्त न होने के कारण नक्षत्रराय के हृदय को बहुत चोट पहुँची।

चिट्ठी पढ़ते-पढ़ते उसके चेहरे के भाव धीरे-धीरे बदलने लगे। देखते-देखते हृदय का पाषाणी-आवरण विदीर्ण हो गया। उसके कम्पायमान हाथ में चिट्ठी भी काँपने लगी। उस चिट्ठी को कुछ देर तक मस्तक से लगाए रखा। उस चिट्ठी में भाई का जो आशीर्वाद था, वह मानो शीतल निर्झर की भाँति उसके तप्त हृदय में झरने लगा। बहुत देर तक निश्चल होकर सुदूर पश्चिम में संध्या-राग-रक्त श्यामल वन-भूमि की ओर निर्निमेष दृष्टि से देखता रहा। चारों ओर निस्तब्ध संध्या अतल स्पर्शी शब्दहीन शांत समुद्र के समान जागती रही। धीरे-धीरे उसकी आँखों में नमी दिखाई

देने लगी, फिर तेजी से आँसू बहने लगे। सहसा नक्षत्रराय ने लज्जा और पश्चाताप में दोनों हाथों से चेहरा ढक लिया।

रोते हुए बोला, "मुझे यह राज्य नहीं चाहिए। भैया, मेरा सारा अपराध क्षमा करके मुझे अपने चरणों में स्थान दीजिए, मुझे अपने साथ रख लीजिए, मुझे दूर मत भगाइए।"

बिल्वन ने एक बात भी नहीं कही - आर्द्र हृदय से चुपचाप बैठा देखता रहा। अंतत: जब नक्षत्रराय शांत हुआ, तब बिल्वन बोला, "युवराज, गोविदमाणिक्य आपकी राह देखते बैठे हैं, और विलम्ब मत कीजिए।"

नक्षत्रराय ने पूछा, "क्या वे मुझे क्षमा कर देंगे?"

बिल्वन ने कहा, "वे युवराज पर तनिक भी क्रोधित नहीं हैं।" अधिक रात हो जाने पर मार्ग में परेशानी होगी। शीघ्र ही एक अश्व लीजिए। पर्वत के नीचे महाराज के आदमी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

नक्षत्रराय ने कहा, "मैं गुप्त रूप से पलायन करता हूँ, सैनिकों को कुछ बताने की आवश्यकता नहीं है। और तिल भर देर करना उचित नहीं, जितनी जल्दी यहाँ से निकल चला जाए, उतना ही अच्छा है।"

बिल्वन ने कहा, "सही बात है।"

तिनमुड़ा पहाड़ पर संन्यासी के साथ शिवलिंग-पूजा हेतु जा रहा है, कह कर नक्षत्रराय बिल्वन के साथ घोड़े पर चढ़ कर चल पड़ा। अनुचरों ने साथ जाना चाहा, किन्तु उन्हें मना कर दिया।

बाहर निकले ही थे कि उसी समय घोड़ों के खुरों की आवाज और सैनिकों का कोलाहल सुनाई पड़ा। नक्षत्रराय एकदम से सकपका गया। देखते-देखते रघुपति सैनिक लेकर लौट आया। आश्चर्यचकित होकर कहा, "महाराज, कहाँ जा रहे हैं?"

नक्षत्रराय कोई उत्तर नहीं दे पाया। उसे निरुत्तर देख कर बिल्वन ने कहा, "महाराज गोविन्दमाणिक्य के साथ भेंट करने जा रहे हैं।"

रघुपति ने एक बार बिल्वन का आपादमस्तक निरीक्षण किया, एक बार भौंहें सिकोड़ीं, उसके बाद आत्म-संवरण करते हुए कहा, "आज ऐसे असमय हम अपने

महाराज को विदा नहीं कर सकते। परेशान होने का तो कोई कारण नहीं है। कल प्रात:काल जाने में भी कोई बात नहीं है। क्या कहते हैं महाराज?"

नक्षत्रराय ने धीमी आवाज में कहा, "कल प्रात: ही जाऊँगा, आज रात हो गई है।"

बिल्वन ने निराश होकर वह रात शिविर में ही व्यतीत की। अगले दिन सुबह नक्षत्रराय के पास जाने की कोशिश की, सैनिकों ने रोक दिया। देखा, चारों ओर पहरा है, कहीं कोई अवकाश नहीं। अंत में रघुपति के पास जाकर कहा, "चलने का समय हो गया है, युवराज को सूचित कीजिए।"

रघुपति ने कहा, "महाराज ने न जाने का निश्चय किया है।"

बिल्वन ने कहा, "मैं एक बार उनसे भेंट करना चाहता हूँ।"

रघुपति - "भेंट नहीं होगी, उन्होंने कह दिया है।"

बिल्वन ने कहा, "महाराज गोविन्दमाणिक्य के पत्र का उत्तर चाहिए।"

रघुपति - "पत्र का उत्तर इसके पहले एक बार और दिया जा चुका है।"

बिल्वन - "मैं उनके अपने मुँह से उत्तर सुनना चाहता हूँ।"

रघुपति - "उसका कोई उपाय नहीं है।"

बिल्वन समझ गया, कोशिश करना बेकार है; केवल समय और बातों का व्यय। जाते समय रघुपति से कह गया, "ब्राह्मण, तुम यह कैसा सर्वनाश करने में जुट गए हो! यह तो ब्राह्मण का काम नहीं है।"

छत्तीसवाँ परिच्छेद

बिल्वन ने लौट कर देखा, इस बीच राजा ने कुकियों को विदा कर दिया है, उन्होंने राज्य में उपद्रव आरम्भ कर दिया था। सैनिकों के दल को लगभग भंग कर दिया है। युद्ध की कोई विशेष तैयारी नहीं है। बिल्वन ने लौट कर राजा को सारा विवरण कह सुनाया।

राजा ने कहा, "तो ठाकुर, मैं विदा लेता हूँ। राज्य धन नक्षत्रराय के लिए छोड़ चला।"

बिल्वन ने कहा, "असहाय प्रजा को दूसरे के हाथों में छोड़ कर आप पलायन कर जाएँगे, यह सोच कर मैं किसी भी प्रकार प्रसन्न मन से विदा नहीं कर सकता, महाराज! विमाता के हाथों में पुत्र को सौंप कर भारमुक्त के समान शान्ति प्राप्त कर पाए, क्या ऐसी कल्पना की जा सकती है?"

राजा बोले, "ठाकुर, तुम्हारे वाक्य बींधते हुए मेरे हृदय में प्रवेश कर रहे हैं, अब मुझे क्षमा करो, मुझे और अधिक कुछ मत कहो। मुझे विचलित करने की चेष्टा मत करो। तुम्हें पता है ठाकुर, मैंने मन-ही-मन प्रतिज्ञा की थी कि रक्तपात नहीं करूँगा; मैं उस प्रतिज्ञा को नहीं तोड़ सकता।"

बिल्वन ने कहा, "तब, महाराज अब क्या करेंगे?"

राजा बोले, "तुमसे सब कुछ बताता हूँ। मैं ध्रुव को साथ लेकर वन में जाऊँगा। ठाकुर, मेरा जीवन नितांत अधूरा रह गया है। मन में जो सोचा था, उसका कुछ भी नहीं कर पाया - जीवन का जितना चला गया है, उसे वापस पाकर और नए सिरे से निर्मित नहीं कर पाऊँगा - ठाकुर, मुझे लग रहा है, भाग्य ने हम लोगों को तीर के समान छोड़ दिया है, अगर एक बार लक्ष्य से तनिक भी इधर-उधर हुए, तो हजार कोशिशें करने पर भी लक्ष्य की ओर नहीं लौट सकते। जीवन के प्रारम्भ में वही जो मैं भटक गया हूँ, अब जीवन के अंत में लक्ष्य को नहीं खोज पा रहा हूँ। जो सोचता हूँ, वह नहीं होता। जिस समय जाग कर आत्म-रक्षा कर पाता, उस समय जागा नहीं, जब डूब रहा हूँ, तब चेतना हुई है। जैसे लोग समुद्र में डूबते समय लकड़ी के टुकड़े का सहारा लेते हैं, उसी तरह मैंने बालक ध्रुव का सहारा लिया है। मैं ध्रुव में आत्म-समाधान खोज कर ध्रुव में ही पुनर्जन्म प्राप्त करूँगा। मैं शुरू से ही पालते-पोसते हुए ध्रुव का निर्माण करूँगा। ध्रुव के संग तिल-तिल मेरा भी विकास होता रहेगा। अपना मनुष्य-जन्म सम्पूर्ण बनाऊँगा। ठाकुर, मैं तो मनुष्य होने लायक ही नहीं हूँ, मैं राजा बन कर क्या करूँगा !"

राजा ने अंतिम बात बड़े भावावेश के साथ कही - सुन कर ध्रुव राजा के घुटनों पर अपना सिर रगड़ते-रगड़ते बोला, "आमि आजा।"

बिल्वन ने हँसते हुए ध्रुव को गोद में उठा लिया। बहुत देर तक उसके मुँह की ओर देखते हुए अंत में राजा से कहा, "वन में क्या कभी मनुष्य का निर्माण किया जाता है? वन में केवल एक पौधे को पाल-पोस कर बड़ा किया जा सकता है। मनुष्य मानव-समाज में ही निर्मित होता है।"

राजा बोले, "मैं एकदम से वनवासी नहीं बन जाऊँगा, मनुष्य-समाज से बस थोड़ा-सा दूर रहूँगा, किन्तु समाज के साथ सारा सम्बन्ध तोड़ नहीं डालूँगा। यह मात्र थोड़े-से दिनों के लिए।"

इधर नक्षत्रराय सैन्य सहित राजधानी के निकट आ पहुँचा। प्रजा के धन-धान्य की लूट होने लगी। प्रजा-जन केवल गोविन्दमाणिक्य को ही शाप देने लगे। कहने लगे, "यह सब केवल राजा के पाप के चलते ही घट रहा है।"

राजा ने एक बार रघुपति से मिलना चाहा। रघुपति के आने पर उससे बोले, "प्रजा को और क्यों कष्ट पहुँचा रहे हो? मैं नक्षत्रराय के लिए राज्य छोड़ कर जा रहा हूँ। अपने मुगल सैनिकों को विदा कर दो।"

रघुपति ने कहा, "जो आज्ञा, आपके विदा होते ही मैं मुगल सैनिकों को विदा कर दूँगा - त्रिपुरा को लूटा जाए, ऐसी मेरी इच्छा नहीं है।"

राजा ने उसी दिन राज्य छोड़ कर जाने की तैयारी कर ली, उन्होंने राज-वेश त्याग दिया, गेरुए वस्त्र धारण कर लिए। नक्षत्रराय को राजा के समस्त कर्तव्यों की याद दिलाते हुए एक लंबा आशीर्वाद-पत्र लिखा।

अंत में राजा ध्रुव को गोद में उठा कर बोले, "ध्रुव, मेरे साथ वन में चलेगा, बेटा?"

ध्रुव ने तत्क्षण राजा के गले से लिपटते हुए कहा, "चलूँगा।"

उसी समय राजा को अचानक याद आया, ध्रुव को साथ ले जाने के लिए उसके चाचा, केदारेश्वर की सम्मति आवश्यक है; राजा ने केदारेश्वर को बुला कर कहा, "केदारेश्वर, तुम्हारी सम्मति हो, तो मैं ध्रुव को अपने साथ ले जाऊँ!"

ध्रुव दिन-रात राजा के पास ही रहता था, उसके चाचा के साथ उसका कोई बड़ा सम्बन्ध नहीं था, लगता है, इसीलिए राजा के मन में कभी नहीं आया कि ध्रुव को साथ ले जाने में केदारेश्वर को कोई आपत्ति हो सकती है।

राजा की बात सुन कर केदारेश्वर ने कहा, "मैं ऐसा नहीं कर सकूँगा, महाराज।"

सुन कर राजा चौंक गए। उन पर सहसा वज्राघात हुआ। थोड़ी देर चुप रहने के बाद बोले, "केदारेश्वर, तुम भी हम लोगों के साथ चलो।"

केदारेश्वर - "नहीं महाराज, वन में नहीं जा पाऊँगा।"

राजा ने कातर होकर कहा, "मैं वन में नहीं जाऊँगा; मैं जन-धन लेकर नगर में ही रहूँगा।"

केदारेश्वर ने कहा, "मैं देश छोड़ कर नहीं जा सकता।"

राजा ने कुछ न कह कर दीर्घ निश्वास छोड़ा। उनकी सारी आशा मृतप्राय हो गई। मानो क्षण भर में सम्पूर्ण धरती का चेहरा बदल गया। ध्रुव अपने खेल में डूबा था - बहुत देर उसकी तरफ देखते रहे, किन्तु उसे जैसे आँखों से देख नहीं पाए। ध्रुव उनके कपड़े का किनारा पकड़ कर खींचते हुए बोला, "खेलो।"

राजा का सम्पूर्ण हृदय विगलित होकर आँसुओं के रूप में आँखों की कोरों में आ गया, बड़े कष्ट से आँसुओं का दमन किया। मुँह फेर कर टूटे हुए हृदय से कहा, "तब ध्रुव रहे, मैं अकेला ही चलता हूँ।"

मानो क्षण भर में शेष जीवन का मरुमय-पथ तड़ितालोक में उनके चक्षु-तारकों पर अंकित हो गया।

केदारेश्वर ध्रुव का खेल रोक कर उससे बोला, "आ, मेरे साथ चल।"

कहते हुए उसका हाथ पकड़ कर खींचा। ध्रुव क्रंदन भरे स्वर में बोल उठा, "नहीं।"

राजा ने चकित होकर ध्रुव की ओर घूम कर देखा। ध्रुव ने दौड़ कर राजा को कस कर पकड़ते हुए जल्दी से उनके घुटनों में सिर छिपा लिया। राजा ने ध्रुव को गोद में उठा कर उसे छाती में भींच लिया। विशाल हृदय विदीर्ण होना चाहता था, छोटे-से ध्रुव को छाती में भींच कर हृदय को नियंत्रित किया। ध्रुव को उसी अवस्था में गोद में लिए वे विशाल कक्ष में टहलने लगे। ध्रुव कंधे पर सिर टिकाए एकदम स्थिर पड़ा रहा।

अंतत: चलने का समय हो गया। ध्रुव राजा की गोद में सोया पड़ा है। सोते हुए ध्रुव को धीरे-धीरे केदारेश्वर के हाथों में सौंप कर राजा यात्रा पर निकल पड़े।

सैंतीसवाँ परिच्छेद

नक्षत्रराय ने सैन्य-सामंतों के साथ पूर्व के द्वार से राजधानी में प्रवेश किया, थोड़ा-सा धन और कुछेक अनुचर लेकर गोविन्दमाणिक्य ने पश्चिम वाले द्वार से यात्रा प्रारम्भ की। नगर के लोगों ने बाँसुरी फूँक कर ढाक (ढोल के आकार से मेल खाता एक वाद्य-यंत्र, जिसकी लम्बाई सत्तर से.मी. और जिसके दोनों गोलकों का

व्यास पैंतालीस-पैंतालीस से.मी. होता है। इसे बाँस की हल्की पतली चंटी से बजाया जाता है, जिसकी लम्बाई लगभग पैंतालीस से.मी. होती है।) ढोल बजा कर हुलुध्वनि (हुलुध्वनि : होठों की विशेष आकृति, जिह्वा, साँस और कंठ-स्वर की सम्मिलित क्रीड़ा से उत्पन्न ध्वनि, जिसे बंगाल में स्त्रियाँ मांगलिक अवसरों पर प्रस्तुत करती हैं।) और शंखध्वनि के साथ नक्षत्रराय की अगवानी की। गोविन्दमाणिक्य जिस मार्ग से घोड़े पर चढ़ कर जा रहे थे, उस मार्ग पर किसी ने भी उनके प्रति सम्मान प्रदर्शित करना आवश्यक नहीं समझा। दोनों ओर की झोपड़ियों में रहने वाली स्त्रियाँ उन्हें सुना-सुना कर गालियाँ देने लगीं, भूख और भूखे बच्चों के रुदन से उन लोगों की जिह्वा तीखी हो गई थी। परसों भारी दुर्भिक्ष के समय जिस बूढ़ी ने राज-द्वार पर जाकर भोजन पाया था और जिसे राजा ने स्वयं सांत्वना दी थी, वही अपने दुर्बल हाथ उठा कर राजा को शाप देने लगी। बालक माँओं से सीख पाकर उपहास उड़ाते हुल्लड़ मचाते राजा के पीछे-पीछे चलने लगे।

राजा दाएँ-बाएँ किसी ओर दृष्टिपात न करके सामने देखते हुए धीरे-धीरे चलने लगे। एक जूमिया खेत से आ रहा था, उसने राजा को देख कर भक्तिभाव से प्रणाम किया। राजा का हृदय भर आया। उन्होंने उसके निकट जाकर स्नेह व्याकुल स्वर में विदा प्रार्थना की। केवल इसी एक जूमिया ने उनके प्रजा-संतान-समुदाय की ओर से उनके राजत्व के अवसान की वेला में उन्हें भक्ति भरे उदास हृदय के साथ विदा किया। बालकों के झुण्ड को राजा के पीछे हुल्लड़ मचाते देख वह अत्यधिक क्रोधित होकर उन्हें भगाने दौड़ा। राजा ने उसे रोक दिया।

अंत में, मार्ग में जिस जगह केदारेश्वर की झोपड़ी थी, राजा वहाँ जा पहुँचे। उस समय एक बार दाहिने घूम कर देखा। आज जाड़े की सुबह है। कुहासा छँट कर सूर्य की किरणें दिखाई पड़ रही हैं। झोपड़ी की ओर देखते ही राजा को पिछले बरस के आषाढ़ महीने की एक सुबह याद आई। घने बादल, घनी बारिश। दूज के क्षीण चन्द्र के समान बालिका हासि चेतनाहीन होकर बिस्तर के कोने में दुबकी सो रही है। छोटा ताता कुछ भी न समझ पाने के कारण कभी दीदी के आँचल का किनारा मुँह में दबा कर दीदी को देख रहा है, कभी अपने गोल-गोल छोटे-छोटे मोटे-मोटे हाथों से आहिस्ता-आहिस्ता दीदी के गाल थपथपा रहा है। आज का यह अगहन महीने का ओस भीगा उजाला प्रात:काल उसी आषाढ़ के मेघाच्छन्न प्रभात में छिपा था। राजा को क्या लगा, कि जो भाग्य आज उन्हें राज्यहीन और अपमानित करके महल से विदा किए दे रहा है, वही भाग्य इस छोटी-सी झोपड़ी के द्वार पर उसी आषाढ़ के धुँधले प्रात:काल में उनकी प्रतीक्षा करता बैठा था? यहीं उसके साथ पहली भेंट हुई

थी। राजा कुछ देर तक इस झोपड़ी के सामने अन्यमनस्क भाव से खड़े रहे। उस समय मार्ग में उनके अनुचरों के अलावा कोई नहीं था। जूमिया के दौड़ाने पर बालक भाग गए थे, लेकिन उसके दूर जाते ही वे फिर से आ धमके, उनके हुड़दंग से चेतना लौटने से राजा निश्वास छोड़ कर फिर से चलने लगे।

सहसा बालकों के शोर-शराबे के बीच एक सुमधुर परिचित स्वर उनके कानों में पड़ा। देखा, छोटा-सा ध्रुव दोनों हाथ उठाए हँसते-हँसते अपने छोटे-छोटे पैरों से उनकी ओर दौड़ा चला आ रहा है। केदारेश्वर पहले ही नए राजा के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने चला गया है, झोपड़ी में केवल ध्रुव और एक बूढ़ी परिचारिका थी। गोविन्दमाणिक्य घोड़ा रोक कर उससे उतर पड़े। ध्रुव दौड़ कर खिल् खिल् करके हँसते हुए उनके ऊपर उछल पड़ा; वह उनके कपड़े पकड़ कर खींच कर, उनके घुटनों में मुँह छिपा कर, अपने प्रथम आनंद के उच्छ्वास का अवसान हो जाने के बाद गंभीर होकर राजा से बोला, "आमि टक् टक् चो'बो।"

राजा ने उसे घोड़े पर चढ़ा दिया। घोड़े पर चढ़ कर वह राजा के गले से लिपट गया, और अपने कोमल कपोल को राजा के कपोल से सटा दिया। ध्रुव अपनी बाल-बुद्धि से राजा के भीतर एक परिवर्तन अनुभव करने लगा। जैसे लोग गहरी नींद से जगाने के लिए नाना प्रकार की चेष्टाएँ करते हैं, उसी तरह ध्रुव ने उनके साथ खींचातानी करके, उनसे लिपट कर, उन्हें चूम कर किसी प्रकार उन्हें पहले वाली स्थिति में ले आने की अनेक चेष्टाएँ कीं। अंतत: असफल होकर मुँह में दो अँगुलियाँ डाल कर बैठा रहा। राजा ने ध्रुव का मनोभाव समझ कर उसे बारम्बार चूमा।

अंत में कहा, "ध्रुव, तब मैं चलूँ!"

ध्रुव राजा के चेहरे की ओर देख कर बोला, "मैं चलूँगा।"

राजा ने कहा, "तुम कहाँ चलोगे, तुम अपने चाचा के पास रहो।"

ध्रुव बोला, "नहीं, मैं चलूँगा।"

उसी समय झोपड़ी से वृद्धा परिचारिका बिड् बिड् करके डाँटते-फटकारते आ पहुँची; जल्दी से ध्रुव का हाथ पकड़ कर खींचते हुए बोली, "चल।"

ध्रुव भयभीत होकर बलपूर्वक दोनों हाथों से राजा को पकड़ कर उनकी छाती में मुँह छिपाए रहा। राजा ने दुखी होकर सोचा, वक्ष की शिराएँ खींच कर फाड़ कर फेंकी जा

सकती हैं, परन्तु इन दो हाथों का बंधन क्या तोड़ा जा सकता है! लेकिन उसे भी तोडना पड़ा। आहिस्ता-आहिस्ता ध्रुव के दोनों हाथ खोल कर उसे जबरदस्ती परिचारिका के हाथों में पकड़ा दिया। ध्रुव पूरी शक्ति से रोने लगा; हाथ फैला कर बोला, "पिताजी, मैं चलूँगा।" राजा ने और पीछे न देख कर तेजी से घोड़े पर चढ़ कर उसे एड़ लगा दी। जितनी भी दूर गए, ध्रुव का आकुल-क्रंदन सुनाई पडता रहा, ध्रुव अपने दोनों हाथ फैलाए कहता रहा, "पिताजी, मैं चलूँगा।" अंत में राजा की प्रशांत आँखों से आँसू बहने लगे। उन्हें पथ-घाट सब कुछ दिखाई देना बंद हो गया। सूर्यालोक और सम्पूर्ण संसार मानो आँसुओं के जल से ढक गया। घोड़े की जिधर इच्छा हुई, उसी ओर दौड़ने लगा।

मार्ग में एक स्थान पर मुगल सैनिकों का एक दल राजा की ओर संकेत करके हँसने लगा, यहाँ तक कि उनके अनुचरों का भी थोड़ा कठोर उपहास आरम्भ कर दिया। राजा का एक सभासद घोड़े पर चढ़ा जा रहा था, वह इस दृश्य को देख कर दौड़ा हुआ राजा के निकट आया। बोला, "महाराज, यह अपमान और सहन नहीं होता। महाराज को इस दीन वेश में देख कर इन लोगों का ऐसा साहस हो रहा है। यह लीजिए तलवार, यह लीजिए पगड़ी। महाराज थोड़ी प्रतीक्षा कीजिए, मैं अपने साथियों को लाकर जरा इन बर्बरों की खबर लेता हूँ।"

राजा ने कहा, "नहीं नयनराय, मुझे तलवार-पगड़ी की आवश्यकता नहीं है। ये लोग मेरा क्या बिगाड़ लेंगे? मैं अब इसकी अपेक्षा बहुत भारी अपमान सहन कर सकता हूँ। नंगी तलवार उठा कर मैं इस संसार में लोगों से और सम्मान प्राप्त करना नहीं चाहता। जिस प्रकार संसार में सर्वसाधारण अच्छे समय बुरे समय में मान-अपमान, सुख-दुःख सहन करते रहते हैं, मैं भी जगदीश्वर का मुँह ताकते हुए उसी प्रकार सहन करूँगा। मित्र विरोधी बन गए हैं, आश्रित कृतघ्न हो गए हैं, नम्र दुर्विनीत हो उठे हैं, शायद एक समय यह मुझे असहनीय होता, परन्तु अब मैं इसे सहन करके ही हृदय में आनंद-लाभ कर रहा हूँ। जो मेरे मित्र हैं, उन्हें मैं जान गया हूँ। जाओ नयनराय, तुम लौट जाओ, नक्षत्र को आदर के साथ निमंत्रित कर लाओ, जिस प्रकार मेरा सम्मान करते थे, उसी प्रकार नक्षत्र का भी सम्मान करना। तुम सब लोग मिल कर नक्षत्र को सदैव सुमार्ग और प्रजा के कल्याण में लगाए रखना, विदा के समय तुम लोगों से मेरी यही प्रार्थना है। देखना, कभी भूल से भी मेरी बात का उल्लेख करके अथवा मेरे साथ तुलना करके उसकी तिल भर निंदा मत करना। तो, मैं विदा होता हूँ।"

कह कर राजा अपने सभासद से गले मिल कर आगे बढ़ गए, सभासद उन्हें प्रणाम करके आँसू पोंछते हुए चला गया।

जब गोमती के किनारे वाले ऊँचे पहाड़ के निकट पहुँचे, तो बिल्वन ठाकुर अरण्य से बाहर निकल कर उनके सम्मुख आकर अंजली उठा कर बोला, "जय हो।"

राजा ने घोड़े से उतर कर उसे प्रणाम किया।

बिल्वन ने कहा, "मैं आपसे विदा लेने आया हूँ।"

राजा बोले, "ठाकुर, तुम नक्षत्र के पास रह कर उसे सत्परामर्श दो। राज्य का हित-साधन करो।"

बिल्वन ने कहा, "नहीं। जहाँ आप राजा नहीं हैं, वहाँ मैं अकर्मण्य हूँ। यहाँ रह कर मैं और कोई कार्य नहीं कर पाऊँगा।"

राजा ने कहा, "तब, कहाँ जाओगे ठाकुर? तब मुझ पर दया करो, तुम्हें पाकर मैं दुर्बल हृदय में बल प्राप्त करता हूँ।"

बिल्वन ने कहा, "मेरी कहाँ आवश्यकता है, मैं इसी की खोज में निकला हूँ। मैं निकट रहूँ अथवा दूर, आपके प्रति मेरा प्रेम कभी विच्छिन्न नहीं होगा, जान लीजिए। लेकिन आपके साथ वन में जाकर मैं क्या करूँगा?"

राजा कोमल स्वर में बोले, "तो, मैं विदा होता हूँ।"

कहते हुए दूसरी बार प्रणाम किया। बिल्वन एक ओर चला गया, राजा दूसरी ओर बढ़ गए।

अड़तीसवाँ परिच्छेद

नक्षत्रराय ने छत्रमाणिक्य नाम धारण करके विशाल समारोह में राजपद ग्रहण किया। राजकोष में अधिक धन नहीं था। प्रजा-जनों का सर्वस्व छीन कर वायदे के अनुसार धन देकर मुगल सैनिकों को विदा करना पड़ा। छत्रमाणिक्य घोरतर दुर्भिक्ष और दारिद्र्य के साथ शासन करने लगा। चारों ओर से अभिशाप और क्रंदन की वर्षा होने लगी।

जिस सिंहासन पर गोविन्दमाणिक्य बैठते थे, जिस शैया पर गोविन्दमाणिक्य शयन करते थे, जो सब लोग गोविन्दमाणिक्य के प्रिय सहचर थे, वे जैसे रात-दिन चुपचाप छत्रमाणिक्य की भर्त्सना करने लगे। यह धीरे-धीरे छत्रमाणिक्य को असहनीय लगने लगा। उसने गोविन्दमाणिक्य से जुड़े समस्त चिह्नों को अपनी आँखों के सामने से हटाना शुरू कर दिया। गोविन्दमाणिक्य द्वारा व्यवहार की जाने वाली सामग्री नष्ट करके फेंक दी और उनके प्रिय अनुचरों को भगा दिया। वह गोविन्दमाणिक्य की नाम-गंध जरा भी सहन नहीं कर पाता था। गोविन्दमाणिक्य का कोई उल्लेख होते ही उसे लगता था, सभी उसे ही लक्ष्य करके यह उल्लेख कर रहे हैं। हमेशा लगता रहता, सभी राजा के रूप में उसे पर्याप्त सम्मान नहीं दे रहे हैं; इसी कारण अचानक अकारण गुस्सा हो उठता था, सभासदों को बहुत परेशान रहना पड़ता था।

वह राज-कार्य जरा भी नहीं समझता था; किन्तु कोई सत्परामर्श देने आता, तो चिढ़ कर कहता, "मैं इसे समझता नहीं! क्या मैं तुम्हें मूर्ख लगता हूँ!"

उसे लगता, सिंहासन का अनधिकारी और राज्य का अपहरणकर्ता समझ कर मन-ही-मन सभी उसकी अवहेलना कर रहे हैं। इसी कारण वह बलपूर्वक अत्यधिक राजा हो उठा; असंगत आचरण करते हुए सभी जगह अपने एकाधिपत्य का प्रदर्शन करने लगा। वह जिसे रखना चाहे, रख सकता है, जिसे मारना चाहे, मार सकता है, इसे विशेष रूप से प्रमाणित करने के लिए, जिसे रखना उचित नहीं था, उसे रख लिया - जिसे मारना उचित नहीं था, उसे मार डाला। प्रजा अन्न के अभाव में मर रही है, किन्तु उसके दिन-रात के समारोहों का अंत नहीं - अहर्निश नृत्य-गीत-वाद्य-भोज। इसके पहले किसी राजा ने सिंहासन पर बैठ कर राज्य-शासन के सम्पूर्ण पंखों को फैला कर ऐसा अपूर्व नृत्य नहीं किया था।

प्रजा-जन चारों ओर असंतोष प्रकट करने लगे - इससे छत्रमाणिक्य अत्यधिक जल-भुन गया; उसने सोचा, यह केवल राजा के प्रति असम्मान का प्रदर्शन है। उसने असंतोष के दुगुने कारण उत्पन्न करते हुए बलपूर्वक उत्पीड़न करके भय दिखा कर सभी के मुँह बंद कर दिए, सम्पूर्ण राज्य में निद्रित निशा के समान सन्नाटा छा गया। वही शांत नक्षत्रराय छत्रमाणिक्य बन कर सहसा इस प्रकार का आचरण करेगा, इसमें आश्चर्य वाली कोई बात नहीं थी। बहुत बार दुर्बल हृदय वाले प्रभुत्व पाने पर इसी तरह प्रचण्ड और स्वेच्छाचारी हो उठते हैं।

रघुपति का काम पूरा हो गया। उसके हृदय में प्रतिहिंसा वृत्ति अंत तक समान रूप से जगी हुई थी, ऐसा नहीं है। धीरे-धीरे प्रतिहिंसा का भाव मिटा कर, हाथ में लिए काम को संपन्न कर डालना ही उसका एकमात्र व्रत हो उठा था। नाना कौशलों से समस्त बाधा-विपत्तियों को पार करके अहर्निश एक उद्देश्य की पूर्ति में लगे रह कर वह एक प्रकार का मादक सुख अनुभव कर रहा था। अंतत: वह उद्देश्य सिद्ध हो गया। अब संसार में और कहीं भी सुख नहीं।

रघुपति ने अपने मंदिर में जाकर देखा, वहाँ कोई जन-प्राणी नहीं है। यद्यपि रघुपति अच्छी तरह जानता था कि जयसिंह नहीं है, तब भी मंदिर में प्रवेश करके मानो दूसरी बार नए सिरे से जाना कि जयसिंह नहीं है। एक-एक बार लगने लगा कि जैसे है, उसके बाद याद आने लगा कि नहीं है। सहसा हवा से किवाड़ खुल गए, उसने चौंकते हुए घूम कर देखा, जयसिंह नहीं आया। जयसिंह जिस कमरे में रहता था, लगा कि उस कमरे में जयसिंह हो भी सकता है - लेकिन बहुत देर तक उस कमरे में प्रवेश नहीं कर पाया, मन में डर लगने लगा कि अगर जाकर देखने पर जयसिंह वहाँ न हुआ!

अंत में जब गोधूलि के धुँधलके में जंगल की छाया गाढ़ी छाया में मिल गई, तब रघुपति ने धीरे-धीरे जयसिंह के कमरे में प्रवेश किया - शून्य निर्जन कमरा समाधि-भवन के समान निस्तब्ध है। कमरे में एक किनारे लकड़ी का एक संदूक और संदूक के बगल में जयसिंह के एक जोड़ा खड़ाऊँ धूल में मैले पड़े हैं। दीवार पर जयसिंह के अपने हाथ से आँका गया काली का चित्र है। कमरे के पूरब के कोने में धातु का एक दीपक धातु के आधार-स्तंभ पर रखा है, पिछले बरस से इस दीपक को किसी ने नहीं जलाया - वह मकड़ी के जाले से ढक गया है। पास की दीवार पर दीपा-शिखा का काला दाग पड़ा हुआ है। कमरे में पूर्वोक्त कुछ चीजों के अलावा और कुछ नहीं है। रघुपति ने गहरा दीर्घ निश्वास छोड़ा। वह निश्वास शून्य कक्ष में ध्वनित हो उठा। धीरे-धीरे अंधकार में और कुछ भी दिखाई देना बंद हो गया। केवल एक छिपकली बीच-बीच में टिक् टिक् करने लगी। जाड़े की हवा खुले दरवाजे से कमरे में आने लगी। रघुपति संदूक पर बैठ कर काँपने लगा।

इसी प्रकार इस निर्जन मंदिर में एक माह व्यतीत किया, किन्तु ऐसे अधिक दिन नहीं कटते। पौरोहित्य छोडना पड़ा। राज-सभा में पहुँचा। राजकाज में हस्तक्षेप किया। देखा, अन्याय, उत्पीड़न और अव्यवस्था छत्रमाणिक्य के नाम पर शासन

कर रहे हैं। उसने राज्य में व्यवस्था स्थापित करने की चेष्टा की। छत्रमाणिक्य को परामर्श देने लगा।

छत्रमाणिक्य चिढ़ कर बोला, "ठाकुर, तुम राज-शासन-कार्य के बारे में क्या जानो? ये सब विषय तुम जरा भी नहीं समझते।"

रघुपति राजा का प्रताप देख कर अवाक् रह गया। देखा, वह नक्षत्रराय और नहीं रहा। धीरे-धीरे राजा के साथ रघुपति की खटपट होने लगी। छत्रमाणिक्य ने सोचा, रघुपति केवल यही समझ रहा है कि उसी ने उसे राजा बनाया है। इसीलिए रघुपति को देखने पर उसे असह्य प्रतीत होने लगता।

अंत में एक दिन साफ-साफ बोला, "ठाकुर, तुम अपने मंदिर का काम देखो। राजसभा में तुम्हारी कोई आवश्यकता नहीं है।"

रघुपति ने छत्रमाणिक्य पर जलती हुई तीव्र दृष्टि डाली। छत्रमाणिक्य थोड़ा लज्जित होकर मुँह फेर कर चला गया।

उनतालीसवाँ परिच्छेद

रामू के दक्षिण में राजाकूल के निकट मगों का जो दुर्ग है, वे अराकान के राजा की अनुमति लेकर वहीं रहने लगे।

गाँववालों के जितने बाल-बच्चे थे, सब के सब दुर्ग में गोविन्दमाणिक्य के पास आ जुटे। गोविन्दमाणिक्य ने उन्हें जोड़ कर एक बड़ी पाठशाला खोल ली। वे उन्हें पढ़ाते थे, उनके साथ खेलते थे, उनके घर जाकर उनके साथ रहते थे, बीमार पड़ने पर देखने जाते थे। ऐसा नहीं कि बालक साधारणत: स्वर्ग से आए हैं या वे देव-शिशु हैं, उनमें मानव और दानव भावों का तनिक भी अभाव नहीं है। स्वार्थपरता, क्रोध, लोभ, द्वेष, हिंसा, उनके भीतर पूरी तरह से बलवती है, ऊपर से ऐसा भी नहीं कि घर में माता-पिता से हर समय अच्छी शिक्षा ही मिलती हो। इसी कारण मगों के दुर्ग में मगों का राज्य-शासन हो गया - मानो दुर्ग में उनचास पवन और चौंसठ भूत एक साथ रहने लगे। गोविन्दमाणिक्य यही सब उपकरण लेकर धैर्य के साथ मनुष्य गढ़ने लगे। एक मनुष्य का जीवन कितना महान और कितने प्राणपण के साथ प्रयत्नपूर्वक पालन करने और रक्षा करने की वस्तु है, इस विषय में गोविन्दमाणिक्य का हृदय सर्वदा जागरूक है। उनके चारों ओर अनंत फल से परिपूर्ण मनुष्य जन्म सार्थक हो जाए, इसी आशा में और अपनी कोशिश से इसे ही सफल बनाने में

गोविन्दमाणिक्य अपना शेष जीवन समर्पित करना चाहते हैं। इसके लिए वे सभी कष्ट, सारे अत्याचार सहन कर सकते हैं। केवल बीच-बीच में कभी-कभी हताश होकर दुःख करने लगते हैं, 'मैं अपना कार्य निपुणतापूर्वक संपन्न नहीं कर पा रहा हूँ। बिल्वन रहता, तो अच्छा होता।'

इस प्रकार गोविन्दमाणिक्य सैकड़ों ध्रुवों के साथ दिन बिताने लगे।

तैंतालीसवाँ परिच्छेद

(यह परिच्छेद स्टूयार्ट कृत बंगाल का इतिहास से संग्रहीत)

इधर शाह शुजा अपने भाई औरंगजेब की सेना द्वारा उत्पीड़ित होकर भागा फिर रहा है। इलाहाबाद के निकट युद्ध क्षेत्र में उसकी पराजय हो गई। विपक्षियों से पराक्रांत शुजा इस विपदा के समय अपने पक्ष वालों पर भी विश्वास नहीं कर पाया। वह अपमानित और भीत भाव में छद्म वेश में साधारण लोगों के समान अकेला भागा फिरने लगा। जहाँ भी जाए, शत्रु सैनिकों की धूलि पताका और उनके घोड़ों के खुरों की आवाजें उसका पीछा करने लगीं। अंत में पटना पहुँच कर उसने फिर से नवाब के वेश में अपने परिवार तथा प्रजा के सामने आने की घोषणा की। उसमें भी, जैसे ही पटना पहुँचा, उसके थोड़े ही समय बाद औरंगजेब का बेटा, शहजादा मुहम्मद सेना सहित पटना के दरवाजे पर आ धमका। शुजा पटना छोड़ कर मुँगेर भाग गया।

मुँगेर में उसके तितर-बितर हुए दलबल के कुछ-कुछ लोग उसके पास आ जुटे और वहाँ उसने नए सैनिक भी इकट्ठे कर लिए। तेरियागढ़ी और शिक्लिगली के किले साफ करके और नदी के किनारे पहाड़ पर प्राचीर का निर्माण करवा कर वह मजबूत होकर बैठ गया।

इधर औरंगजेब ने अपने कुशल सेनापति मीरजुमला को शहजादा मुहम्मद की सहायता के लिए भेज दिया। शहजादा मुहम्मद ने खुलेआम मुँगेर के किले के निकट पहुँच कर पड़ाव डाल दिया और मीरजुमला दूसरे गुप्त मार्ग से मुँगेर की ओर चल पड़ा। जब शुजा शहजादा मुहम्मद के साथ छोट-मोटे युद्ध में उलझा था, उसी समय अचानक समाचार मिला कि मीरजुमला बहुत बड़ी सेना लेकर वसंतपुर आ पहुँचा है। शुजा परेशान होकर तत्काल अपने सारे सैनिकों के साथ मुँगेर छोड़ कर राजमहल भाग गया। उसका पूरा परिवार वहीं रह रहा था। सम्राट के सैनिक बिना देर किए वहाँ भी उसके पीछे पहुँच गए। शुजा ने छह दिन तक प्राणपण से युद्ध करते हुए शत्रु-सैनिकों को आगे नहीं बढ़ने दिया। लेकिन जब देखा कि और बचाव संभव नहीं,

तो एक दिन तूफानी अँधेरी रात में अपना पूरा परिवार और यथासंभव धन-संपत्ति लेकर नदी पार करके तोंडा भाग गया तथा वहाँ किले की साफ-सफाई में जुट गया।

उसी समय घनी बारिश आ गई, नदी का पाट चौड़ा और रास्ता कठिन हो गया। सम्राट के सैनिक आगे नहीं बढ़ पाए।

इस युद्ध के पहले शहजादा मुहम्मद के साथ शुजा की कन्या का विवाह तय हो गया था। किन्तु युद्ध के झंझट में दोनों ही पक्ष उस बात को भूल गए थे।

इस समय बारिश के कारण युद्ध स्थगित है और मीरजुमला अपने शिविर को राजमहल से कुछ दूर ले गया है, ऐसे समय तोंडा के शिविर से शुजा के एक सैनिक ने गुप्त रूप से आकर शहजादा मुहम्मद के हाथों में एक चिट्ठी दी। शहजादे ने खोल कर देखा, शुजा की बेटी ने लिखा है - 'शहजादे, क्या यही मेरा भाग्य था? जिसे मन-ही-मन पति-रूप में वरण करके अपना सम्पूर्ण हृदय समर्पित कर दिया, जो अँगूठियों का आदान-प्रदान करके मुझे ग्रहण करने के लिए वचनबद्ध हुआ था, वही आज निष्ठुर तलवार हाथ में लेकर मेरे पिता के प्राण लेने चला आया है, क्या मुझे यही देखना था! शहजादे, क्या यही हमारे विवाह का उत्सव है! क्या इतना बड़ा समारोह उसी के लिए है! क्या उसी कारण आज हमारा राजमहल रक्त से लाल है! क्या उसी कारण शहजादा दिल्ली से हाथों में लोहे की बेड़ियाँ लेकर आया है! यही क्या प्रेम की बेड़ी है!'

इस चिट्ठी को पढ़ते ही मानो अचानक आए प्रबल भूकंप से शहजादे मुहम्मद का हृदय विदीर्ण हो गया। वह एक पल भी चैन से नहीं रह पाया। उसने तत्क्षण साम्राज्य की आशा, बादशाह का अनुग्रह, सब कुछ तुच्छ अनभव किया। उसने प्रथम यौवन की दीप्त अग्नि में हानि-लाभ के सम्पूर्ण विचार का विसर्जन कर दिया। अपने पिता का सारा कार्य उसे अत्यंत अनुचित और निष्ठुर अनभव हुआ। इसके पहले वह पिता की षड्यंत्र-प्रवण निष्ठुर नीति के विरुद्ध पिता के सम्मुख ही अपना मत स्पष्ट रूप से व्यक्त करता था, और कभी-कभी सम्राट का क्रोध-भाजन भी बनता था। आज उसने अपने सेनाध्यक्षों में से कुछ मुख्य-मुख्य लोगों को बुला कर सम्राट की निष्ठुरता, दुष्टता और अत्याचार के सम्बन्ध में असंतोष प्रकट करके कहा, "मैं तोंडा में अपने चाचा के साथ मिलने जा रहा हूँ। तुम लोगों में से जो मुझे प्यार करता हो, मेरे पीछे चला आए!"

वे लंबा सलाम ठोंकते हुए तत्काल बोले, "शहजादे जो कह रहे हैं, वह अति यथार्थ है, देखना कल ही आधे सैनिक तोंडा के शिविर में शहजादे के साथ मिल जाएँगे।"

मुहम्मद उसी दिन नदी पार करके शुजा के शिविर में जा पहुँचा।

तोंडा में उत्सव का वातावरण छा गया। सारे के सारे युद्ध की बात एकदम भूल गए। अब तक केवल पुरुष ही व्यस्त थे, अब शुजा के परिवार में रमणियों के हाथ में भी काम का अंत नहीं रहा। शुजा ने अत्यंत स्नेह और आनंद के साथ मुहम्मद को अंगीकार किया। लगातार के रक्तपात के बाद खून का खिंचाव मानो और बढ़ गया। नृत्य-गीत-वाद्य के बीच विवाह संपन्न हो गया। नाच-गान समाप्त होते-न-होते खबर मिली कि सम्राट की सेना निकट आ गई है।

जैसे ही मुहम्मद शुजा के शिविर में गया, वैसे ही सैनिकों ने मीरजुमला को समाचार भेज दिया। एक सैनिक ने भी मुहम्मद का साथ नहीं दिया, वे समझ गए थे, मुहम्मद ने जान-बूझ कर विपत्ति के सागर में छलाँग लगाई है, वहाँ जाकर उसके दल में मिलना पागलपन है।

शुजा और मुहम्मद को विश्वास था कि सम्राट के अधिकांश सैनिक युद्ध-क्षेत्र में शहजादा मुहम्मद के साथ मिल जाएँगे। मुहम्मद इसी आशा में अपनी पताका फहराते हुए रण-भूमि में उतर गया। सम्राट के सैनिकों का एक बड़ा दल उसकी ओर बढ़ा। मुहम्मद आनंद में फूला न समाया। लेकिन वह दल निकट आते ही मुहम्मद के सैनिकों के दल पर गोले बरसाने लगा। तब मुहम्मद पूरी स्थिति समझ पाया। परन्तु तब और समय नहीं था। उसके सैनिक भाग खड़े हुए। युद्ध में शुजा का बड़ा बेटा मारा गया।

उसी रात हतभागा शुजा और उसका जामाता सपरिवार द्रुतगामी नौका पर सवार होकर ढाका भाग गए। मीरजुमला ने ढाका में शुजा का पीछा करना आवश्यक नहीं समझा। वह विजित क्षेत्र में व्यस्था कायम करने में लग गया।

दुर्दशा के दिनों में विपदा के समय जब मित्र एक-एक कर साथ छोड़ जाते हैं, तब मुहम्मद के धन-प्राण-मान को तुच्छ समझ कर - शुजा का पक्ष लेने के कारण शुजा का हृदय विगलित हो गया। वह मन-प्राण से मुहम्मद को प्यार करने लगा। उसी समय ढाका शहर में औरंगजेब का एक पत्र-वाहक गुप्तचर पकड़ा गया। उसका पत्र शुजा के हाथ लग गया। औरंगजेब ने मुहम्मद को लिखा था, 'सबसे प्यारे बेटे मुहम्मद, तुम अपने कर्तव्य की अवहेलना करके पितृ-द्रोही बन गए हो और अपने

निष्कलंक यश पर कलंक लगा लिया है। रमणी की छलनामय हँसी पर मुग्ध होकर अपने धर्म का विसर्जन कर दिया है। भविष्य में जिसके हाथों में सम्पूर्ण मुगल साम्राज्य का शासन-भार आने वाला है, वह आज एक रमणी का दास बना बैठा है! जो भी हो, जब मुहम्मद ने अल्लाह के नाम की कसम खाकर अफसोस जता दिया है, तो मैंने उसे माफ किया। लेकिन जिस काम के लिए गया है, जब उसे पूरा करके आएगा, तभी वह मेरे अनुग्रह का अधिकारी होगा।'

शुजा इस चिट्ठी को पढ़ कर वज्राहत हो गया। मुहम्मद ने बार-बार कहा कि उसने कभी भी पिता के सामने अफसोस प्रकट नहीं किया। यह सब उसके पिता की चालाकी है। लेकिन शुजा का संदेह दूर नहीं हुआ। शुजा तीन दिन तक सोचता रहा। अंत में चौथे दिन बोला, "बेटा, हम लोगों के बीच विश्वास का बंधन ढीला पड़ गया है। इसलिए मैं अनुरोध कर रहा हूँ, तुम अपनी पत्नी को लेकर चले जाओ, अन्यथा हम लोगों के मन को शान्ति नहीं मिलेगी। मैंने राजकोष का दरवाजा खोल दिया है, श्वसुर के उपहार स्वरूप जितनी इच्छा हो, धन-रत्न ले जाओ।"

मुहम्मद ने आँसू बहाते हुए विदा ली, उसकी पत्नी उसके साथ चली गई।

शुजा बोला, "और युद्ध नहीं करूँगा। चट्टग्राम के बंदरगाह से जहाज पर चढ़ कर मक्का चला जाऊँगा।"

कह कर छद्म वेश में ढाका छोड़ कर चला गया।

चौवालीसवाँ परिच्छेद

जिस दुर्ग में गोविन्द माणिक्य रहते थे, एक दिन वर्षा के अपराह्न में उसी दुर्ग के मार्ग से एक फकीर के साथ तीन बालक और एक वयप्राप्त भारवाही चले आ रहे हैं। बालक अत्यधिक थके दिखाई पड़ रहे हैं। हवा तेज बह रही है और बारिश लगातार पड़ रही है। सबसे छोटे बालक की आयु चौदह बरस से अधिक नहीं होगी, उसने ठण्ड से काँपते हुए दुखी स्वर में कहा, "अब्बा, और नहीं चल सकता।" कहते हुए अधीर होकर रोने लगा।

फकीर ने बिना कुछ कहे उसे छाती के पास खींच लिया।

बड़े बालक ने छोटे का तिरस्कार करते हुए कहा, "रास्ते के बीच इस तरह रोने का क्या फायदा है? चुप हो जा। अब्बा को बेकार में दुखी मत कर।"

छोटा बालक उठ रही रुलाई को दबा कर शांत हो गया।

मँझले बालक ने फकीर से पूछा, "अब्बा, हम लोग कहाँ जा रहे हैं?"

फकीर ने कहा, "यह जो किले का शिखर दिखाई पड़ रहा है, इसी किले में जा रहे हैं।"

"वहाँ कौन है अब्बा?"

"सुना है, कहीं के एक राजा संन्यासी होकर वहाँ रहते हैं।"

"राजा संन्यासी क्यों हो गया अब्बा?"

फकीर ने कहा, "पता नहीं बेटा! शायद उनके सगे भाई ने सैनिकों के साथ देश से देशांतर तक गाँव के कुत्ते के समान उनका पीछा किया। उन्हें राज्य और सुख-संपदा से बेदखल कर दिया। अब शायद दारिद्र्य की अँधेरी छोटी-सी गुफा और संन्यासी के गेरुए कपड़े ही उनके लिए संसार में छिपने का एकमात्र स्थान हैं। अपने भाई के विद्वेष से, विषदंत से और कहीं भी बचाव नहीं।"

कहते हुए फकीर ने मजबूती से अपने अधरोष्ठ दबा कर हृदय के आवेग का दमन किया। बड़े बालक ने पूछा, "यह संन्यासी कौन-से देश का राजा था?"

फकीर ने कहा, "वह नहीं पता बेटा!"

"अगर हमें आश्रय न दे?"

"तब हम लोग पेड़ के नीचे लेट जाएँगे। हम लोगों के लिए और जगह कहाँ है!"

शाम होने के कुछ पहले ही दुर्ग में फकीर और संन्यासी की भेंट हुई। दोनों ही दोनों को देख कर आश्चर्य में पड़ गए। गोविन्दमाणिक्य ने ध्यान से देखा - फकीर, फकीर नहीं लगा। छोटी-छोटी स्वार्थपर इच्छाओं से मन को हटा कर एकमात्र महान उद्देश्य में नियोजित करने पर चेहरे पर जो एक प्रकार की ज्वालाहीन विमल ज्योति प्रकट हो जाती है, वह फकीर के चेहरे पर दिखाई नहीं दी। फकीर हमेशा सतर्क भयभीत। उसके हृदय की सम्पूर्ण तृषित वासना मानो उसके जलते हुए दो नेत्रों से अग्नि-पान कर रही है। उसके मजबूती से बंद अधरोष्ठों और कस कर भिंचे दाँतों के बीच विफलता से घायल उसका विद्वेष मानो हृदय की अँधेरी गुफा में प्रवेश करके अपने को अपने आप ही डँस रहा है। साथ में तीन बालक, उनकी अत्यंत सुकमार सुन्दर श्रांत यंत्रणा भरी देह और एक प्रकार का गर्वित संकोच देख कर लगता है, जैसे

वे जन्म से ही सार-सँभाल के साथ सम्मान के छींके पर टँगे हुए थे, उन्होंने यही पहली बार जमीन पर पैर रखा है। चलने पर पैरों की अँगुलियों में जो धूल लग जाती है, मानो पहले उन्हें इसका प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं था। संसार में कदम-कदम पर यह धूल भरी गंदी दरिद्रता मानो उनमें संसार के प्रति घृणा को जन्म दे रही है, कदम-कदम पर उत्कृष्ट श्रेणी की चटाई और मिट्टी के बीच भेद देख कर वे जैसे संसार का तिरस्कार कर रहे हैं। मानो पृथिवी ने विशेषकर उन्हीं के साथ भेदभाव करके अपनी विशाल उत्कृष्ट चटाई लपेट कर रख दी है। मानो सभी ने उनके प्रति अपराध कर डाला है। दरिद्र लोग भिक्षा माँगने के लिए अपने गंदे कपड़ों में उनके बहुत निकट आने का जो साहस कर रहे हैं, यह केवल उनकी प्रतिद्वंद्विता है; घृणा योग्य कुत्ता कहीं निकट न आ जाए, इस कारण जैसे लोग रोटी का टुकड़ा दूर से ही फेंक देते हैं, मानो ये लोग भी उसी प्रकार भूखे गंदे भिखारियों को देख कर मुँह घुमा कर दूर से ही अनायास एक मुट्ठी मुद्राएँ फेंक सकते हैं। अधिकांश संसार का एक प्रकार का अति सामान्य रूप और फटेहाल निर्धनता मानो उनकी आँखों में केवल एक भारी बेअदबी है। वे जो संसार में सुखी और सम्मानित नहीं बन पा रहे हैं, यह केवल संसार का ही दोष है।

ऐसा नहीं कि गोविन्दमाणिक्य ने ठीक-ठीक इतना ही सोचा था। वे लक्षण देख कर ही समझ गए थे कि यह फकीर अपनी समस्त इच्छाओं को विसर्जित करके स्वाधीन और स्वस्थ होकर संसार का कार्य करने को बाहर निकला हो, ऐसा नहीं है; यह केवल अपनी इच्छाओं के तृप्त न होने के कारण असंतुष्ट होकर सारे संसार से विमुख होकर आया है। फकीर का विश्वास है कि वह जो चाहता है, वही उसका प्राप्य है, और संसार उससे जो चाहता है, वह सुविधानुसार देने पर भी चलेगा और न देने से भी कोई नुकसान नहीं है। ठीक इसी विश्वास के अनुसार काम नहीं चलता, इसी कारण वह संसार को छोड़ कर निकल पड़ा है।

गोविन्दमाणिक्य देखने में फकीर को राजा भी लगे, संन्यासी भी प्रतीत हुए। उसने ठीक ऐसी आशा नहीं की थी। उसने सोचा था, शायद एक लम्बोदर पगड़ीधारी बड़ा-सा मांस-पिंड दिखेगा अथवा एक दीन वेशधारी मैला-कुचैला संन्यासी, अर्थात भस्माच्छादित धूलिशैयाशायी उद्धत दर्प देखने को मिलेगा। लेकिन दोनों में से कोई भी देखने को नहीं मिल सका। गोविन्दमाणिक्य को देखने पर अनुभव हुआ कि जैसे उन्होंने सब कुछ त्याग दिया है, फिर भी जैसे सब कुछ उन्हीं का है। वे कुछ भी नहीं चाहते, इसीलिए जैसे सब कुछ पा लिया है - उन्होंने अपने को उत्सर्गित कर दिया है, इसी से मिल गया है। उन्होंने जिस प्रकार आत्म-समर्पण किया है, उसी प्रकार

सम्पूर्ण जगत स्वेच्छा से उनकी पकड़ में आ गया है। किसी प्रकार का आडम्बर न होने के कारण ही वे राजा हैं, तथा सम्पूर्ण संसार के अत्यंत निकटवर्ती हो जाने के कारण ही वे संन्यासी हैं। इसी कारण उन्हें राजा भी नहीं बनना पडता, संन्यासी भी नहीं हो जाना पडता।

राजा ने अपने अतिथियों की आदर के साथ सेवा की। उन्होंने उनकी सेवा को परम अवहेलना के साथ ग्रहण किया। मानो इस पर उन लोगों को पूरा अधिकार था। उन लोगों के आराम के लिए क्या-क्या समान आवश्यक है, राजा को यह भी बता दिया। राजा ने बड़े बालक से स्नेहपूर्वक पूछा, "रास्ते की कठिनाई से बहुत थकन अनुभव हो रही है क्या?"

बालक उसका अच्छी तरह उत्तर न देकर फकीर से सट कर बैठ गया। राजा ने उसकी ओर देख कर तनिक हँसते हुए कहा, "तुम लोगों का यह सुकुमार शरीर रास्ता चलने के लिए नहीं है। तुम लोग मेरे इस दुर्ग में रहो, मैं तुम्हें जतन से रखूँगा।"

राजा की इस बात का उत्तर देना उचित है या नहीं, और इन सब लोगों के साथ ठीक किस प्रकार से व्यवहार करना करणीय है, बालक सोच नहीं पाए - वे फकीर से और अधिक सट कर बैठ गए। मानो सोच रहे हों, कहाँ का यह आदमी अपने मैले हाथ बढ़ाए इसी समय उन्हें पकड़ने आ रहा है।

फकीर गंभीर होकर बोला, "अच्छा, हम लोग कुछ समय तुम्हारे इस दुर्ग में रह सकते हैं।"

मानो राजा पर अनुग्रह किया हो। मन-ही-मन कहा, 'अगर जानते कि मैं कौन हूँ, तो इस अनुग्रह पर तुम्हारे आनंद की सीमा न रहती।'

राजा किसी भी तरह तीनों बालकों को वश में नहीं कर पाए। और फकीर जैसे पूरी तरह निर्लिप्त बना रहा।

फकीर ने गोविन्दमाणिक्य से पूछा, "सुना है, तुम एक समय राजा थे, कहाँ के राजा?"

गोविन्दमाणिक्य ने कहा, "त्रिपुरा का।"

सुन कर बालकों ने उन्हें बहुत हीन समझा। उन्होंने कभी त्रिपुरा का नाम सुना ही नहीं था। किन्तु फकीर थोड़ा-सा विचलित हो गया। फिर पूछा, "तुम्हारा सिंहासन गया कैसे?"

गोविन्दमाणिक्य थोड़ी देर चुप रहे। अंत में बोले, "बंगाल के नवाब शाह शुजा ने मुझे राज्य से निर्वासित कर दिया है।"

नक्षत्रराय की कोई बात नहीं कही।

यह बात सुनते ही सभी बालकों ने चौंकते हुए फकीर के चेहरे की ओर देखा। फकीर का चेहरा मानो बदरंग पड़ गया। वह सहसा बोल पड़ा, "लगता है, यह सब तुम्हारे भाई का किया-धरा है? शायद तुम्हारे भाई ने तुम्हें राज्य से भगा कर संन्यासी बना दिया है?"

राजा आश्चर्यचकित हो गए; बोले, "आपको यह समाचार कहाँ से मिला साहब?"

फिर सोचा, 'आश्चर्य की कोई बात नहीं, किसी से भी सुन लिया होगा।'

फकीर ने जल्दी से कहा, "मुझे कुछ पता नहीं। मैं केवल अनुमान कर रहा हूँ।"

रात होने पर सभी सोने चले गए। उस रात फकीर को और नींद नहीं आई। जागते हुए दुःस्वप्न देखने लगा और प्रत्येक शब्द पर चौंकने लगा।

अगले दिन फकीर गोविन्दमाणिक्य से बोला, "विशेष आवश्यकता के कारण यहाँ और रहना नहीं हो पाया। हम लोग आज विदा होते हैं।"

गोविन्दमाणिक्य ने कहा, "बालक मार्ग के कष्ट से थक गए हैं, उन्हें और कुछ समय आराम करने देना अच्छा रहेगा।"

बालक थोड़े कुढ़ गए - उनमें से सबसे बड़े ने फकीर की ओर देख कर कहा, "हम लोग कोई नितांत बच्चे नहीं हैं, जरूरत पडने पर आसानी से कष्ट सहन कर सकते हैं।"

वे गोविन्दमाणिक्य का प्यार स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं। गोविन्दमाणिक्य ने और कुछ नहीं कहा।

फकीर जिस समय चलने की तैयारी कर रहा था, तभी दुर्ग में एक और अतिथि का आगमन हुआ। उसे देख कर फकीर और राजा, दोनों ही आश्चर्य में पड़ गए। फकीर

सोच नहीं पाया कि क्या करे! राजा ने अपने अतिथि को प्रणाम किया। अतिथि कोई और नहीं, रघुपति है। रघुपति ने राजा का प्रणाम स्वीकार करके कहा, "जय हो।"

राजा ने तनिक परेशान होकर पूछा, "नक्षत्रराय के पास से आ रहे हो ठाकुर? कोई विशेष समाचार है?"

रघुपति ने कहा, "नक्षत्रराय ठीक हैं, उनके लिए चिन्ता मत कीजिए।"

आकाश की ओर हाथ उठा कर बोला, "मुझे जयसिंह ने आपके पास भेज दिया है। वह बचा नहीं। मैं उसकी इच्छा पूरी करूँगा, अन्यथा मुझे शान्ति नहीं। आपके पास रह कर, आपका संगी बन कर आपके समस्त कार्यों में शामिल होऊँगा।"

राजा पहले रघुपति का भाव कुछ समझ नहीं पाए। उन्होंने एक बार सोचा, लगता है, रघुपति पागल हो जाएगा। राजा चुप रहे।

रघुपति ने कहा, "मैंने सब देख लिया है, किसी में ही सुख नहीं है। ईर्ष्या करने में सुख नहीं, आधिपत्य जमा कर सुख नहीं, आपने जिस मार्ग का अवलंबन किया है, उसी में सुख है। मैंने आपके साथ परम शत्रुता की, मैंने आपसे ईर्ष्या की, मैंने आपकी बलि चढ़ा देनी चाही थी, आज मैं आपके सम्मुख सब कुछ त्यागने आया हूँ।"

गोविन्दमाणिक्य ने कहा, "ठाकुर, तुमने मेरा परम उपकार किया है। मेरा शत्रु मेरी परछाईं के समान मेरे साथ-साथ ही लगा हुआ था, तुमने मुझे उसके हाथ से बचा लिया है।"

रघुपति उस बात पर कोई अधिक ध्यान न देकर बोला, "महाराज, मैं संसार में रक्तपात करके इतने दिन तक जिस पिशाची की सेवा करता आया हूँ, उसने अंत में मेरे ही हृदय का रक्त खींच कर पी डाला। उसी शोणित पिपासी जड़ता-मूढ़ता को मैं दूर कर आया हूँ; वह अब महाराज के राज्य के देव-मंदिर में नहीं है, अब वह राजसभा में घुस कर सिंहासन पर चढ़ी बैठी है।"

राजा ने कहा, "अगर वह देव-मंदिर से दूर हो गई है, तो धीरे-धीरे मनुष्य के हृदय से भी दूर हो जाएगी।"

पीछे से एक परिचित स्वर ने कहा, "नहीं महाराज, मानव-हृदय ही प्रकृत-मंदिर होता है, वहीं खड्ग पर धार चढ़ती है और वहीं शत-सहस्र नर बलियाँ चढ़ती हैं। देव-मंदिर में केवल उसका साधारण अभिनय होता है।"

राजा ने चकित होते हुए घूम कर देखा, सहास्य सौम्य-मूर्ति बिल्वन। उसे प्रणाम करके रुद्ध कंठ से कहा, "आज मेरा क्या आनंद है!"

बिल्वन ने कहा, "महाराज ने स्वयं को जीत लिया है, इसी कारण सबको जीत लिया है। उसी के फलस्वरूप आज आपके द्वार पर शत्रु-मित्र सभी एकत्र हो गए हैं!"

फकीर ने आगे बढ़ कर कहा, "महाराज, मैं भी आपका शत्रु हूँ, मैं भी आपकी पकड़ में आ गया हूँ।"

रघुपति की ओर अँगुली का इशारा करते हुए कहा, "यह ब्राह्मण ठाकुर मुझे जानता है। मैं ही शुजा हूँ, बंगाल का नवाब, मैंने ही आपको बिना किसी अपराध के निर्वासित किया है और उस पाप का दण्ड भी पा लिया है - आज मेरे भाई की ईर्ष्या रास्ते-रास्ते मेरा पीछा कर रही है, मेरे राज्य में ही मेरे खड़े होने की जगह नहीं है। मैं छद्म वेश में और नहीं रह सकता, आपके समक्ष सम्पूर्णत: आत्म-समर्पण करके बच गया।"

इसके बाद राजा और नवाब, दोनों आलिंगनबद्ध हो गए। राजा ने केवल यही कहा, "मेरा क्या सौभाग्य है!"

रघुपति ने कहा, "महाराज, आपके साथ शत्रुता करने में भी लाभ है। आपसे शत्रुता करने जाकर ही आपके द्वारा अपना लिया गया अन्यथा कभी भी आपको जान नहीं पाता।"

बिल्वन ने हँस कर कहा, "जैसे फाँसी के फंदे में पड़ कर फंदे को तोड़ने की कोशिश में गर्दन और भी कसती चली जाती है।"

रघुपति ने कहा, "मुझे और दुःख नहीं - मुझे शान्ति मिल गई है।"

बिल्वन ने कहा, "शान्ति सुख अपने भीतर ही होता है, केवल जान नहीं पाते। भगवान ने जैसे मिट्टी की हाँड़ी में अमृत रख दिया है, अमृत है, कह कर किसी को भी विश्वास नहीं होता। आघात लगाने से जब हाँड़ी टूट जाती है, तब बहुत बार अमृत का स्वाद मिलता है। हाय हाय, ऐसी वस्तु भी ऐसी जगह रहती है!"

उसी समय एक आकाश-भेदी शोर उठा। देखते ही देखते दुर्ग में छोटे-बड़े नानाविध बालक आ धमके। राजा ने बिल्वन से कहा, "ये देखो ठाकुर, मेरे ध्रुव!"

कहते हुए बालक दिखा दिए।

बिल्वन ने कहा, "जिसके प्रसाद से आपने इतने सारे बालक पाए हैं, वह भी आपको भूला नहीं है, उसे ले आता हूँ।"

कह कर बाहर गया।

थोड़ी देर में ध्रुव को गोद में उठाए लाकर राजा की गोद में दे दिया। राजा ने उसे छाती में भींच कर पुकारा, "ध्रुव!"

ध्रुव कुछ नहीं बोला, गंभीर भाव से चुपचाप राजा के कंधे पर सिर टिकाए पड़ा रहा। बहुत दिन बाद पहली बार मिलने के कारण बालक के नन्हे-से हृदय में मानो एक प्रकार का अव्यक्त अभिमान और लज्जा उत्पन्न हो गए। राजा को लपेट कर चेहरा छिपाए रहा।

राजा बोले, "और सब हुआ, केवल नक्षत्र ने मुझे भाई नहीं कहा।"

शुजा ने तीखे भाव से कहा, "महाराज, और सभी अति सहजता से ही भाई के समान व्यवहार करते हैं, केवल अपना भाई नहीं करता।"

शुजा के हृदय से अभी भी शूल निकला नहीं था।

उपसंहार

यहाँ बताना आवश्यक है कि तीन बालक शुजा की तीन छद्म-वेशी कन्याएँ थीं। शुजा मक्का जाने के उद्देश्य से चट्टग्राम के बंदरगाह पर गया था। लेकिन दुर्भाग्यवश भारी बारिश आ जाने के कारण एक भी जहाज नहीं मिला। अंत में हताश होकर लौट आने वाले रास्ते में गोविन्दमाणिक्य के साथ दुर्ग में भेंट हुई। कुछ दिन दुर्ग में रह कर शुजा को समाचार मिला कि सम्राट के सैनिक अभी भी उसकी खोज कर रहे हैं। गोविन्दमाणिक्य ने उसे वाहन आदि और काफी अनुचरों समेत अपने मित्र, अराकानपति के पास भेज दिया। जाते समय शुजा ने उन्हें अपनी बहुमूल्य तलवार उपहारस्वरूप प्रदान की।

इस बीच राजा, रघुपति और बिल्वन ने मिल कर सारे गाँव को जैसे जगा कर खडा कर दिया। राजा का दुर्ग पूरे गाँव का प्राण हो गया।

इस प्रकार छह वर्ष व्यतीत होते-होते छत्रमाणिक्य की मृत्यु हो गई। गोविन्दमाणिक्य को सिंहासन पर लौटा लाने के लिए त्रिपुरा से दूत आया।

गोविन्दमाणिक्य ने पहले कहा, "मैं राज्य में नहीं लौटूँगा।"

बिल्वन ने कहा, "महाराज, यह नहीं हो सकता। जब धर्म स्वयं द्वार पर आकर आह्वान कर रहे हैं, तब उनकी अवहेलना मत कीजिए।"

राजा ने अपने छात्रों की ओर देख कर कहा, "मेरी इतने दिन की आशा अधूरी, इतने दिन का कार्य असमाप्त रह जाएगा।"

बिल्वन ने कहा, "यहाँ आपका कार्य मैं करूँगा।"

राजा ने कहा, "तुम अगर यहाँ रह जाओगे, तो मेरा वहाँ का कार्य अधूरा रह जाएगा।"

बिल्वन ने कहा, "नहीं महाराज, अब आपको मेरी और आवश्यकता नहीं है। अब आप अपने पर स्वयं निर्भर कर सकते हैं। अगर मेरे पास समय हुआ, तो मैं कभी-कभी आपसे मिलने आ जाऊँगा।"

राजा ने ध्रुव को लेकर राज्य में प्रवेश किया। ध्रुव अब नितांत छोटा नहीं है। उसने बिल्वन की कृपा से संस्कृत भाषा में शिक्षा प्राप्त करके शास्त्र के अध्ययन में मन लगा लिया है। रघुपति ने फिर से पौरोहित्य अपना लिया। इस बार मंदिर में लौट कर मृत जयसिंह पुन: जीवित रूप में प्राप्त हो गया।

इधर विश्वासघातक अराकानपति ने शुजा की हत्या करके उसकी सबसे छोटी बेटी से विवाह कर लिया।

अभागे शुजा के प्रति अराकानपति की नृशंसता याद करके गोविन्दमाणिक्य दुखी होते थे। शुजा के नाम को चिरस्मरणीय बनाने के लिए उन्होंने तलवार के विनिमय से प्राप्त बहुत सारे धन द्वारा कुमिल्ला नगरी में एक उत्कृष्ट मस्जिद का निर्माण कराया था। वह आज भी शुजा मस्जिद के नाम से विद्यमान है।

गोविन्दमाणिक्य के प्रयत्न से मेहेरकूल आबाद हुआ था। उन्होंने ब्राह्मण-गण को बहुत सारी भूमि ताम्रपत्र पर सनद लिख कर प्रदान की थी। महाराज गोविन्दमाणिक्य ने कुमिल्ला के दक्षिण में बातिशा ग्राम में एक विशाल तालाब खुदवाया था। उन्होंने अनेक महान कार्यों का आयोजन किया था, किन्तु संपन्न नहीं कर पाए। इसी का पश्चात्ताप करते हुए 1669 ई. में मानव-लीला पूरी कर ली।'

(अंतिम दो पैराग्राफ श्रीयुत बाबू कैलासचंद्र सिंह प्रणीत 'त्रिपुरा का इतिहास' से उद्धृत - रवीन्द्रनाथ ठाकुर)

राजर्षि - Rajashri in Hindi

1. राजर्षि भाग 1
2. राजर्षि भाग 2
3. राजर्षि भाग 3
4. राजर्षि भाग 4

https://www.hindiadda.com/rajarshi-part-iv/